जुलाई १९८३
वर्ष ७ : अंक ३

निश्चय

बनारसी साड़ी
इण्डियन सिल्क हाउस
कॉलेज स्ट्रीट मार्केट • कलकत्ता-१२

Prakash Trading Company

12 INDIA EXCHANGE PLACE
CALCUTTA-700001

Gram: PEARLMOON Telephone: 22-4110 22-3323

The Bikaner Woollen Mills

Manufacturer and Exporter of Superior Quality
Woollen Yarn, Carpet Yarn and Superior
Quality Handknotted Carpets

Office and Sales Office :

BIKANER WOOLLEN MILLS

Post Box No. 24
Bikaner, Rajasthan
Phones : Off. 3204
Res. 3356

Main Office :

4 Meer Bohar Ghat Street
Calcutta-700007
Phone : 33-5969

Branch Office :
Srinath Katra : Bhadhoi
Phone : 378

तित्थयर

श्रमण संस्कृति मूलक मासिक पत्र

वर्ष ७ : अंक ३

संपादन

गणेश ललवानी

राजकुमारी बेगानी

आजीवन : एक सौ एक

वार्षिक शुल्क : दस रुपये

प्रस्तुत अंक : एक रुपया

प्रकाशक

जैन भवन

पी - २५ कलाकार स्ट्रीट

कलकत्ता-७००००७

मुद्रक

सुराना प्रिन्टिंग वर्क्स

२०५ रवीन्द्र सरणी

कलकत्ता-७००००७

सूची

डा० लुई पी० टैसीटोरी ६६

दिव्य मूर्ति ! दिव्य सत्य ! ७४

जीवन्धर चम्पू में नारी निरूपण ७७

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र ८२

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या ६६

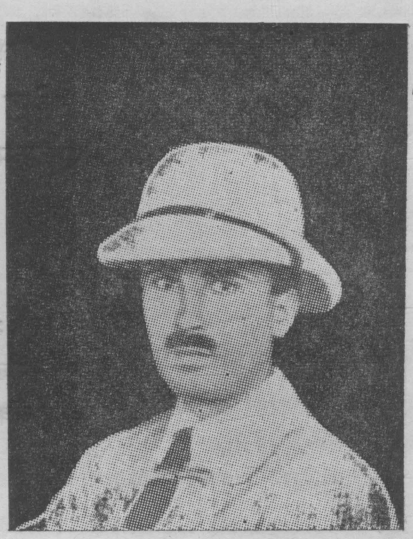

डा० लुई पी० टैसीटोरी

डा० लुई पी० टैसीटोरी

श्री प्रकाशचन्द्र जैन

फादर कामिल बुल्के का निधन हिन्दी जगत के लिये एक बहुत बड़ी क्षति हैं इसमें सन्देह नहीं। इस हिन्दी भक्त, राम कथा प्रेमी मनीषी के प्रति श्रद्धांजलि अर्पित करना हिन्दी भाषियों का पुनीत कर्त्तव्य है। लेकिन इस शताब्दी के द्वितीय दशक में एक और कामिल बुल्के इस देश की सीमाओं के अन्दर हिन्दी तथा भारतीय भाषा एवं संस्कृति की सेवा में संलग्न था और उसे इस देश से इतना प्यार था कि उसने अपने शरीर को इसी देश की माटी को अर्पित कर दिया। हम हिन्दी प्रेमियों में अज्ञात अथवा हमारे द्वारा विस्मृत उस महापुरुष का नाम है—डा० लुई पी० टैसीटोरी। वह सम्भवतः प्रथम यूरोपियन था जिसने रामायण पर शोध कर डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त की। उसने भारत में रह कर हिन्दी की विभिन्न बोलियों, ब्रज भाषा, अवधी, डिंगल इत्यादि का गहन अध्ययन किया। राजस्थानी भाषा और संस्कृति से इस मनीषी को अतीव स्नेह था और उसके कार्यकाल का अधिकांश भाग बीकानेर में ही व्यतीत हुआ। वहीं वह चिर निद्रा में आज भी सो रहा है।

डा० लुई पी०टैसीटोरी का जन्म १३ सितम्बर १८८७ को इटली के अदीन नामक स्थान में हुआ था। बाल्यावस्था से ही वे कुशल बुद्धि तथा विद्या व्यसनी थे। सन् १९०६ में उन्होंने संस्कृत का अध्ययन प्रारम्भ किया तथा १९१० में स्नातक उपाधि प्राप्त की। इसके एक वर्ष पश्चात ही उन्होंने प्रो० पैवोलिनी के मार्ग दर्शन में "राम चरित मानस" पर शोध प्रबन्ध लिखा जिसमें तुलसीकृत राम चरित मानस तथा बाल्मीकि कृत रामायण का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। इस शोध प्रबन्ध पर पादुआ विश्व विद्यालय ने उन्हें डाक्टरेट की उपाधि प्रदान की। भारतीय संस्कृति, भाषा, साहित्य तथा दर्शन ने डा० टैसीटोरी को इतना प्रभावित किया कि भारत जाने की तीव्र आकांक्षा उनमें जाग्रत हो गई। उनका शोध प्रबन्ध अंग्रेजी में प्रकाशित हुआ तथा प्राच्य भाषाओं के महान् विद्वान डा० ग्रियर्सन ने उसकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। डा० ग्रियर्सन ने भारत सरकार से भारतीय रियासतों के मध्य कालीन इतिहास तथा वीर गाथा काव्यों के शोध हेतु डा० टैसीटोरी की सेवाएँ प्राप्त करने का अनुरोध किया। इस प्रकार टैसीटोरी को अपने स्वप्नों के देश में जाने का

सुअवसर प्राप्त हुआ। इसी मध्य उन्होंने फ्लोरेंस में ३०० से भी अधिक हिन्दी, गुजराती, राजस्थानी, बंगाली तथा मराठी हस्तलिखित ग्रन्थों का अ ययन किया।

२४ मार्च १९१४ को जब यूरोप में प्रथम विश्वयुद्ध के काले बादल मंडरा रहे थे, डा० टैसीटोरी ने जलयान द्वारा भारत के लिये प्रस्थान किया। वे ८ अप्रैल को बम्बई पहुँचे। इसके पश्चात् वे कलकत्ता में तीन मास रहे और एशियाटिक सोसाइटी के सहयोग से अपने कार्य की रूपरेखा बनाई। वहां ब्रिटिश तथा भारतीय अधिकारियों का सहयोग प्राप्त किया और फिर वे जोधपुर चले गये। उन्होंने बीकानेर तथा जोधपुर को केन्द्र बनाकर राजस्थान के आन्तरिक अंचलों का दौरा किया। वे बीकानेर नरेश महाराज गंगा सिंह के सम्पर्क में आये और उन्होंने उन्हें राजस्थानी व्याकरण की रचना का कार्य सौंपा। एक ओर डा० टैसीटोरी का राजाओं से सम्पर्क हुआ तो दूसरी ओर जैनाचार्य विजय धर्म सूरि तथा मुनि श्री विद्या विजय के सान्निध्य में भी आये। विजय धर्म सूरि जी महाराज से लुई का पत्र-व्यवहार इटली से ही प्रारम्भ हो गया था। उनके सम्पर्क में आकर उन्होंने मांसाहार का पूर्णतः त्याग कर दिया। १९१५ में उन्हें आल्पस दुर्घटना में अपने भाई की मृत्यु का दुःखद समाचार मिला लेकिन दुःखी और निरुत्साहित होकर भी वे अपने शोध कार्य में लगे रहे। अपने महान कार्य के लिये वे नगर-नगर ग्राम-ग्राम घूमे। रेल यात्रा की अपेक्षा उन्हें प्रायः ऊँटों और घोड़ों पर या पैदल तपती हुई रेगिस्तानी भूमि में यात्राएँ करनी पड़ीं। उन्होंने पुरातत्व वस्तुओं, मुद्राओं, हस्तलिखित ग्रन्थों, काव्यों, दर्शन ग्रन्थों इत्यादि का संग्रह किया एवं अनेक ग्रन्थों का अनुवाद किया, समालोचनायें लिखीं। इस प्रकार ५ वर्ष तक वे कठोर परिश्रम करते रहे।

१० अप्रैल १९१९ को टैसीटोरी अपने परिजनों से मिलने इटली गये। १६ मई को वहाँ पहुँचने पर उन्हें अपनी ममतामयी माता के देहान्त का दुःखद समाचार मिला। कुछ समय इटली में रह कर वे पुनः भारत आये। कठोर परिश्रम और पारिवारिक वियोग के आघात ने टैसीटोरी के शरीर को जर्जर कर दिया। वे भारत आकर निमोनिया से ग्रस्त हो गए और २२ नवम्बर १९१९ को मात्र ३२ वर्ष की अवस्था में उनका देहान्त हो गया। आज भी बीकानेर की भूमि में ये महामनीषी चिरनिद्रा में सो रहे हैं।

डा० लुई पी० टैसीटोरी का स्थान हिन्दी भाषा के प्रमुख समीक्षक एवं भाषा-

विद् के रूप में निश्चित किया जा सकता है। उन्हें हिन्दी की प्रमुख बोलियों अवधी, ब्रज, राजस्थानी इत्यादि पर पूर्ण अधिकार प्राप्त था। इसके अतिरिक्त बंगला, मराठी और गुजराती में उनकी गहरी पैठ थी। उन्होंने गुजराती और डिंगल के व्याकरण की रचना की। अनेक प्राचीन ग्रन्थों का सम्पादन एवं अनुवाद किया और उनकी समीक्षाएँ कीं। अपने शोध कार्य के लिए टैसीटोरी ने राजस्थान के अंचल में सोभासर, मेरासर, रामसर, सरासर, जमलसर, भाखला, सुजानगढ़, काहूजी, सूरनगद, रंग महल, वीदासर, गोपासपुर, रतनगढ़ इत्यादि सैकड़ों स्थानों की यात्राएँ कीं। उन्होंने विभिन्न स्थानों में पुरातत्व सामग्रियों के संग्रहालयों का निरीक्षण किया और बहुत से शिलालेखों की छाप लेकर उनको पढ़ा तथा उनकी व्याख्या की। उनके अनेक निबंध और ग्रन्थ प्रकाशित हुए जिनमें से भव वैराग्य शतकम्, राम चरित मानस और रामायण, नासिकेतोपाख्यान का राजस्थानी भाषा में रूपान्तर, करकण्डुकहा, हाल की सतसई, भक्त और कवि तुलसीदास, तुलसी की प्राचीन वैसवारी की व्याकरण के कुछ नमूने, आधुनिक भारतीय भाषाओं में कृदन्त का उद्भव, परमज्योति स्तोत्र, कल्याण मन्दिर स्तोत्र का व्रजभाषा में रूपान्तर, वर्तमान जैनाचार्य विजय धर्म सूरि, राजस्थान का चारण साहित्य बेलि कृष्णरूक्मिणीरी इत्यादि प्रमुख हैं।

आचार्य विजयधर्म सूरि जी के संसर्ग के प्रभाव से डा० टैसीटोरी जैन धर्म से बहुत प्रभावित हुये। उन्होंने अहिंसा दिग्दर्शन, जैन शासन, प्राकृतिक मार्गोपदेशिका इत्यादि की समालोचनायें लिखी तथा अनेक जैन स्तोत्रों का ब्रज और राजस्थानी भाषाओं में रूपान्तर किया।

एक भाषा शास्त्री के रूप में उन्होंने पश्चिमी राजस्थानी व्याकरण, पुरानी गुजराती एवं पुरानी पश्चिमी राजस्थानी तथा अपभ्रंश एवं मारवाड़ी भाषाओं पर शोध पूर्ण लेख और ग्रन्थ लिखे।

डाक्टर टैसीटोरी के पत्र उनके विचारों और भावनाओं को विवृत करते हैं। राजस्थान से उन्हें कितना लगाव था यह आचार्य श्री विजय धर्म सूरिजी को १२ मार्च १९१४ को लिखे गये पत्र की इन पंक्तियों से प्रकाशित होता है।

"वास्तव में सारे भारत में राजपूताना ही एक ऐसा प्रदेश है जिससे मैं एक लम्बे अरसे से प्रेम करता हूँ।"

निरामिष भोजन के सम्बन्ध में उन्होंने आचार्य श्री को लिखा, "डाक्टर रौंका ने मुझे चेतावनी दी कि मांस भोजन सर्वथा त्याग करने से तुम भारत वर्ष में बहुत कमजोर बन जाओगे। मैं तो इस विषय का जानकार नहीं फिर भी मेरा ख्याल है कि उनका कहना यथार्थ नहीं है क्योंकि मुझे याद है कि मैं इटली में एक वर्ष तक लगातार निरामिष भोजी रहा था पर मेरी मजबूती में कोई फरक नहीं आया। इसके बाद में मेरा तो यह ख्याल बना कि निरामिष भोजन अवश्यमेव उतना ही पुष्टि कारक है जितना मांस तथा उसके साथ शीघ्रतर पचने वाला।"

आचार्य श्री को एक अन्य पत्र में वे लिखते हैं, "मैं येन-केन-प्रकारेण भारत में भारतीय भाषाओं का अध्ययन करने के लिये आना चाहता हूँ। मुझे अपनी मातृ भाषा से अधिक प्यार भारतीय भाषाओं से है। बचपन से ही मुझे भारत के सम्पर्क में आने की अभिलाषा रही है और भारत को ही मैं अपने जीवन का प्रधान कार्यक्षेत्र समझता हूँ।

उनके एक पत्र की निम्नलिखित उक्ति से उनका भारत प्रेम परिलक्षित होता है, "मैं अभी तक क्वांरा हूँ। इस वक्त मैं २५ वर्ष का हूँ। मैं भारतीय लड़की के सिवाय किसी दूसरी लड़की से शादी नहीं करूँगा।"

एक अन्य पत्र में लिखते है, "जितना बन सकेगा मैं भारतीयों के हृदय में मिल-जुल जाऊँगा। मैं भारत में इसलिये आया हूँ क्योंकि मुझे भारत के लोगों व उनकी भाषा और साहित्य से प्रेम है और इसीलिये मैं जितना भी ज्यादा इसके बारे में जान सकूँगा उतनी ही अधिक खुशी मुझे होगी।"

अंग्रेजी में लिखे हुये एक पत्र में उन्होंने लिखा—

"I am not an English man to look down upon all that is not English or at least European. I have the highest respect and admiration for the Indian people."

इस प्रकार डा० लुई पी० टैसीटोरी विश्व इतिहास में एक अद्वितीय उदाहरण हैं। क्या किसी विदेशी से हम एक अन्य देश, वह भी परतंत्र, की भाषा, साहित्य और संस्कृति के लिए इतना समर्पित होने की आशा कर सकते हैं?

महान भारत प्रेमी फादर कामिल बुल्के से टैसीटोरी सम्भवतः कहीं भी पीछे नहीं थे। यदि वे स्वतंत्र भारत में जीवित होते तो उन्हें देशव्यापी सम्मान

मिलता लेकिन अल्पायु में ही उनको मृत्यु ने विस्मृति के गर्भ में डाल दिया। इस महान हिन्दी प्रेमी को यथोचित सम्मान दिलाने में श्री हजारीमल जी बांठिया का योगदान अद्वितीय है। १९५४ में उन्होंने बीकानेर जा कर श्री साकरिया जी के साथ डा० टैसीटोरी की कब्र की खोज की। कब्र पर कोई निर्माण नहीं था। अतः बांठिया जी ने १९५६ में अपने अर्थ से कब्र का एक पावन स्मारक निर्माण कराया। इसका उद्घाटन राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त सुप्रसिद्ध विद्वान डा० सुनीति कुमार चटर्जी द्वारा सम्पन्न हुआ। उन्हीं की कृपा से मुझे भी टैसीटोरी के सम्बन्ध में जानकारी हुई और उन्हीं से प्राप्त साहित्य एवं सामग्री के आधार पर इस लेख को लिखनेमें मैं सक्षम हुआ हूँ। यदि इस नररत्नने उचित आयु प्राप्त की होती तो हिन्दी और राजस्थानी इत्यादि भारतीय भाषाओं के उन्नयन में उनका अद्वितीय योगदान होता इसमें सन्देह नहीं।

दिव्य मूर्ति ! दिव्य सत्य !

लियोना स्मिथ क्रेमसर

सन् १९६२। मांसाहारियों के मध्य मैं स्वतः एक शाकाहारी बन गयी। इस कार्य के कारण कई मित्रों को खोया—पति विमुख होने लगे—परिवार लज्जित हुआ।

हमारा परिवार पीढ़ियों से शिकारी, मत्स्यजीवी और मांसाहारी रहा है। वंश से वे अधिकांशतः अंग्रेज थे। ई० सन् १७०० से अमेरिका आकर छोटे-छोटे भूस्वामी बन गए थे और अपने पालतू जानवरों को साथ लिए पश्चिम की ओर फैलते गए।

रक्तपात से मुझे सदैव नफरत रही। "कितनी अजीब है अपनी यह प्यारी बच्ची ! जो कि खून देखकर रो पड़ती है, बूचड़खाना देखकर चीख उठती है।" (घर वाले कहते)

अब मैं बड़ी हो गयी हूँ। कुछ सोच सकती हूँ, विचार कर सकती हूँ। मांसाहार के जिस बोझ ने मुझे दबोच रखा था उसे मैंने एकाएक झटक दिया। किन्तु उस समय मैं 'शाकाहार' शब्द से एक दम अपरिचित थी। यह भी नहीं जानती थी कि ऐसे भी कुछ मनुष्य हैं जो मांसाहार नहीं करते। बस अन्तर से एक आवाज उठी—मांसाहार मत करो।

शीघ्र ही मैंने एक आध्यात्मिक उपलब्धि की प्यास अनुभव की। अतः पुनः मेरी परम्परा और परिवेश से संघर्ष होने लगा। कारण उनमें धर्म के प्रति न लगाव था न विद्वेष। वे थे धर्म से एकदम उदासीन।

उस समय मैं कैलिफोर्निया के सैनफ्रांसिस्को में रहती थी। मैंने विधिवत् जितने भी इसाई सम्प्रदाय थे उनका अनुसरण किया। वे बात तो भगवान की करते थे साथ ही मांसाहार में भी दिलचस्पी लेते थे। सोचती—तो क्या मेरे लिए कोई धर्म नहीं है ? सच कहती हूँ उस समय मेरे स्वप्न बिना किसी आधार के तैर रहे थे।

निराशा में भी आशा लिए हुए मैं इसाई धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों की जानकारी के लिए साधारण पुस्तकालयों का सहारा लेने लगी। इस प्रकार भारत के ऊपर लिखा एक अध्याय मैं पढ़ रही थी। वहाँ जैन धर्म के विषय

में एक पंक्ति लिखी हुई थी। वह थी—"किसी भी जीव का हनन न करने की एक जीवन विधा।" मैं तो सन्न-सी रह गयी। सोचने लगी—न जाने सुदूर का यह धर्म कैसा है ?

सहायक लाइब्रेरियन ने बताया कि उसे इसकी जानकारी नहीं है। अन्ततः इम्पोर्ट स्टोर के एक क्लर्क ने कहा कि वह बम्बई के एक जैन महाजन को जानता है। मैंने उन्हें पत्र दिया। छः महीने बाद अलीगंज के वर्ल्ड जैन मिशन से एक पैकेट प्राप्त हुआ।

इस भाँति विधिवत् मेरा अध्ययन प्रारम्भ हुआ। जो कुछ नहीं समझती उसने भी मुझे हताश नहीं किया। कारण मेरे मन में सदैव यह बात जागृत रहती कि यह एक ऐसा धर्म है जो किसी भी जीव का घात नहीं करता।

मिशन का पत्र 'वायस आफ अहिंसा' मेरा पहला अवलम्बन हुआ। महीनों तक मैंने उसके सम्पादक तथा उसके लेखकों को पत्र दिये—और उन्होंने भी धैर्य और सहानुभूति के साथ मुझे शिक्षा मूलक पत्रोत्तर दिए। कभी पुस्तिका या ग्रन्थ भी भेजे।

हो सकता है शाकाहार एक विश्वासमात्र हो, दो इन्वर्टेड कोमा के मध्य उल्लेख करने जैसा। कोई उदाहरण नहीं। जीवों के लिए अन्तर की पीड़ा नहीं। यह अहिंसक धर्म मुझे जो दे सकता है क्या मैं उससे अधिक उससे आशा करती हूँ ? वाह्यतः मेरा अध्ययन चलता रहा।

'रिलिजन आफ तीर्थंकराज' भेंट स्वरूप प्राप्त हुई। मन उल्लसित हो उठा। बाद में इसके रंगीन चित्र देखे। मूर्त्तियाँ मेरे मन को ऊबा देती हैं अतः बेमना मैं इसके पन्ने उलटने लगी।

एक धूमिल-सी मूर्त्ति धूमिल व समय से जीर्ण। पर उस मूर्त्ति में कुछ ऐसा था जिसने मुझे जागृत कर दिया। मैंने अपने हृदय को उसके नग्न चरणों पर चढ़ा दिया—'ओ पथ भटके, अब घर लौटो।' मैं मूर्त्ति के चरणों में गिर पड़ी। वे चरण कमल से चमकने लगे।

यह मूर्त्ति कम्बदहली के भगवान नेमिनाथ की थी। सोचने लगी—कौन हैं ये ? जिन्होंने निमिष मात्र में मेरे जीवन को असीम से जोड़ दिया। अतः शीघ्रतापूर्वक मैं उनकी जीवन कथा पढ़ने लगी।

'रिलिजन आफ तीर्थंकराज' पृष्ठ ७७-७८।

(भगवान नेमिनाथ ने) राजाओं के आहार के लिए एकत्रित किए गए

जीवों की चीख सुनी। उस करुण दृश्य से उनका दयार्द्र हृदय इतना प्रभावित हुआ कि उन्होंने तत्क्षण उन्हें मुक्त करा दिया और स्वयं प्रव्रज्या लेने का निर्णय लिया।

(भगवान ने कहा) इन जीवों के भी हमारे जैसे प्राण हैं। इन्हें भी जीने का और अध्यात्म पथ पर अग्रसर होने का अधिकार है।

'दिव्य मूर्त्ति ! दिव्य सत्य !'

अब मेरी पूर्ण सत्ता जैन धर्म के लिए समर्पित है। वह मूर्त्ति मुझे विचारों के उस पार ले गयी है। भगवान नेमिनाथ की मूर्त्ति के भीतर का प्रकाश मुझे मेरे अध्यात्म नीड़ में लौटा लाया है।

'नमो नेमिनाथाय'

वह स्मरणीय दिन। आज बीस वर्ष हो गए। जितना गहन मैं अध्ययन करती हूँ उतनी अधिक मैं उस धर्म में डूबी जाती हूँ जो धर्म मुझे नेमिनाथ की मूर्त्ति से प्राप्त हुआ था।

अब तक मैंने चित्रों में फोटों में कितने ही तीर्थंकरों की मूर्त्तियाँ देखी हैं। अवश्य मेरी वह ऊबाहट जिसकी कोई व्याख्या नहीं की जा सकती अब चौबीस तीर्थंकरों के प्रति श्रद्धा में परिणत हो गयी है।

फिर भी मेरा हृदय कम्बदहली के नेमिनाथ के ही चरणों में लग्न है।

जितने वर्ष बीते, दिन बीते, इतनी ही मैं उनके चरणों में झुकती गयी हूँ और कहती रही हूँ—'तुम दिव्य आत्मा हो। मैं तुम्हारे सामने इसलिए झुकती हूँ कि मैं भी तुम्हारी तरह दिव्य आत्मा बनना चाहती हूँ।'

इसी प्रकार भविष्य में भी दिनों वर्षों झुकती रहूँगी, कहती रहूँगी।

जीवन्धर चम्पू में नारी-निरूपण

कु० राका जैन

भारत में नारी को सदा सम्मान की दृष्टि से देखा गया है। वह पुरुष की सहचरी एवं प्रेरिका शक्ति बनकर उसके जीवन में आनन्द की सृष्टि करती है। हमारी संस्कृति में नारी को मातृ शक्ति माना गया है, उसे 'देवी' पद से विभूषित किया गया है। मनुस्मृति में कहा गया है कि जहां नारियों की पूजा होती है वहां देवता निवास करते हैं—'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।' "जहां पूजा जाता नारीत्व वहीं पर अमरों का घर है"—श्री गुञ्जन।

पाश्चात्य समाज नारी को प्रेयसी के रूप में ही देखता है, किन्तु भारतीय संस्कृति नारी को पुरुष की वासना-पूर्ति का साधन नहीं मानती। नारी में वह शक्ति है जिसने असभ्य एवं जंगली मानव को सच्चा मानव बना दिया। यह भारतीय संस्कृति की ही विशेषता है कि उसने परस्त्री को मातृवत कहा—'मातृवत् परदारेषु।' हमारे पूर्वजों ने घर को घर नहीं कहा, गृहिणी को ही घर माना है—

न गृहं गृहमित्याहुर्गृहिणी गृहमुच्यते।

प्राचीन काल में नारी का जो सम्मान था, वह मध्य युग में नष्ट हो गया। मध्ययुगीन भारतीय समाज भूल गया था कि 'यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र देवताः।' अतः नारी को हीन दृष्टि से देखा जाने लगा।

प्राचीन भारतीय संस्कृति में नारी की स्थिति जहाँ हीन बताई गयी है वहां उसे नीति मर्मज्ञ और विदुषी भी बताया गया है। हीन बताए जाने का मुख्य कारण धार्मिक दृष्टि रही है। इसीलिए नारी को संसार का कारण बताया गया। जीवन्धर चम्पू में एक ओर नारी की अवमानना की गयी तो दूसरी ओर अनुमोदना। जीवन्धर चम्पू में नारी-निरूपण खट्टा-मीठा आस्वादन कराता है अर्थात नारी के गुणों के साथ-साथ दोषों का भी दिग्दर्शन किया गया है। यह कटु सत्य है कि किसी भी वस्तु को कसौटी पर कसने के लिए उसका बहुमुखी अनुचिन्तन करना होता है। अतः उसके गुण दोषों का वर्णन करना स्वाभाविक ही है।

जीवन्धर चम्पू में सर्व प्रथम नारी-निरूपण के मध्य रानी विजया का व्यक्तित्व सामने आता है। नारी पति के लिए चरित्र, सन्तान के लिए ममता, समाज के लिए शील, विश्व के लिए दया तथा जीव मात्र के लिए

करुणा संजोने वाली महाप्रवृत्ति ही है। रानी विजया का चरित्र अपने व स्व भर्ता सत्यन्धर के चरित्रोत्थान के लिए टानिक है। वह हमारे समक्ष नार्योचित पतिव्रता रूप लिए उपस्थापित हुई है। स्वप्न के माध्यम से पति सत्यन्धर के मरण की सूचना मिलने पर वह अतिशय व्यथित होती है। प्रतिनायक काष्ठांगार से लोहा लेने हेतु रणभूमि में जाने के लिए नृपराज सत्यन्धर के उद्यत होने पर उनके मंगल की कामना करती है। उसके हृदय में सत्यन्धर के अतिरिक्त अन्य किसी का स्थान नहीं है। समाज के मध्य कवि ने उसे शील की प्रतिमूर्ति के रूप में स्थान दिया है।

रानी विजया की सन्तान के प्रति ममता अटूट एवं अनुपम है। वह नृपराज सत्यन्धर के मरणोपरान्त नृप कुंवर जीवन्धर का जन्म होने पर उसके जीवन यापन के विषय में चिन्तित होती है किन्तु पुण्य प्रताप के द्वारा उसका जीवन सुखमय व्यतीत होता है। बड़े होने पर जीवन्धर जब दण्डक वन में माता विजया से मिलते हैं तो वह कहती है कि काष्ठाङ्गार पर विजय प्राप्त कर सुख पूर्वक राजभोग करो। रानी विजया ने अपनी आठों पुत्र बधुओं के प्रति भी अपने वात्सल्य पूर्ण आन्तरिक मनोभावों को व्यक्त किया है।

जीवन्धर के राजसिंहासनारूढ़ हो जाने पर रानी विजया तपश्चरण का आश्रय लेकर दीक्षा ग्रहण करती हैं। जीवन्धर जैसे चरमशरीरी महापुरुष को जन्म देकर वह धन्य हुई है। श्री मानतुंगाचार्य ने भक्तामरस्तोत्र में कहा है—

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्।
नान्या सुतंत्वदुपमं जननी प्रसूता॥
सर्वा दिशो दधति भानु सहस्ररश्मिं।
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशुजालम्॥

अर्थात—हे भगवन्, सैकड़ों स्त्रियां पुत्रों को जन्म देती हैं परन्तु, दूसरी माता तुम्हारे जैसे पुत्र को उत्पन्न नहीं कर सकती सो ठीक ही है क्योंकि सभी दिशाएं नक्षत्रों को धारण करती हैं परन्तु सहस्र रश्मि सूर्य को एक पूर्व दिशा ही उत्पन्न करती है।

अतः जीवन्धर जैसे प्रदीप्त सूर्य को जन्म देकर विजयारानी सदा अमर हैं, धन्य हैं और दीक्षा धारण कर उनका आकिंचन व्यक्तित्व सराहनीय है। इस प्रकार अन्य पात्रों के मध्य जीवन्धर जननी विजया का वर्णन बड़े महत्वपूर्ण ढंग से किया गया है।

नारी कवि की कलम का लक्ष्य युग-युग से होती आ रही है। महाकवि हरिचन्द्र ने जीवन्धर चम्पू में नारी को अपनी कलम का लक्ष्य स्थान-स्थान पर बनाया है। जीवन्धर चम्पू शृङ्गार प्रधान काव्य है अतः शृङ्गार वाहिनी नारी का सौन्दर्य पग-पग पर उपस्थापित किया गया है। जीवन्धर परिणीता गन्धर्वदत्ता, सुरमञ्जरी, क्षेमश्री प्रभृति आठ रानियों का सौन्दर्य सँवारने में कवि ने अलौकिक कल्पना शक्ति का सहारा लिया है, किन्तु सर्वाधिक सौन्दर्य के वर्णन में उन्होंने तृतीय लम्ब में गन्धर्वदत्ता का चित्रण कितना मनोहारी किया है—

सरोजयुग्मं बहुधा तपः स्थितं बभूव तस्याश्चरणद्वयं ध्रुवम्।
न चेत्कथं तत्र च हंसाकाविमौसमेत्य हृद्य तनुतां कलस्वनम् ॥ ३।५१
विभान्ति तस्य नखराः पदांशुरक्तानुनाः किं च विरिञ्चिकल्पाः।
अन्यांगना वक्त्रविलोकनाय विनिर्मलाः सन्मणि दर्पणा वा ॥ ३।५२

अर्थात्—कमल-युग्म ने अनेक प्रकार से तप में स्थिर रहकर पुण्य-संचय किया था इसलिए उनके दोनों चरण बन सके थे, यदि ऐसा न होता तो दोनों चरण-हंसों का आश्रय लेकर हृदयहारी शब्द कैसे करते ? पैर की किरणों से जिनका अग्रभाग लाल हो रहा है ऐसे उसके नख इस प्रकार सुशोभित हो रहे थे मानों अन्य स्त्रियों के मुख देखने के लिए विधाता द्वारा बनाए हुए अतिशय निर्मल मणिमय दर्पण ही हों।

वह गन्धर्वदत्ता क्या किन्नरांगना थी या असुर की पुत्री थी या कामदेव की स्त्री रति थी या सुवर्ण की लता थी या बिजली थी या तारिका थी अथवा क्या नेत्रों की भाग्य रेखा थी ? उसके अधरोष्ठ को कितने ही लोग तो ऐसा कहते थे कि यह मुख रूपी चन्द्रमा के समीप शोभा पाने वाला सन्ध्या कालीन राग ही है, कोई कहते थे कि यह नवीन पल्लव ही है, कोई कहते कि यह मुख की कान्ति रूपी समुद्र का मूंगा ही है, पर हम कहते हैं कि यह दन्त पंक्ति रूपी मणियों की रक्षा के लिए लाख से लगायी हुई मनोहर मुहर ही है।

बनारसीदास की 'शोभा में शृंगार बसे' उक्ति के अनुरूप कवि ने शोभा में शृंगार की सृष्टि की है। इस प्रकार गन्धर्वदत्ता नैसर्गिक सौन्दर्य की अधिष्ठात्री है। गन्धर्वदत्ता के समान अन्य रानियों का सौन्दर्य यथास्थान गद्य-पद्य में अंकित किया गया है।

विधवा नारी की स्थिति का भी जीवन्धर चम्पू में प्रसंगवशात् चित्रण किया गया है। विधवा महिला केशों में नव मालिका और शरीर में हल्दी

नहीं लगाती। पतिरहित स्त्री का भोगोपभोग सामग्री में लीन रहना निन्दास्पद है—

प्रजावति विजानती सकल पद्धति त्वं कथं
विभर्षि नवमालिकां कचकुले हरिद्रां तनौ।
न युक्तमिदमास्थितं विगतभर्तृकामद्य वां
वृथा खलु सुवासिका सकल लोक गर्हास्पदम् ॥ ८।१५

अर्थात्—यद्यपि तुम सब पद्धति को जानती हो तो भी केशों में नव मालिका और शरीर पर हल्दी क्यों धारण कर रही हो? तुम्हारा यह रहन सहन योग्य नहीं है। वास्तव में पति-रहित स्त्रियों का सुखिया रहन-सहन सब लोगों की निन्दा का स्थान होता है।

नारी के वैधव्य-जीवन के साथ-साथ उसका सम्भ्रान्त स्वरूप भी उद्घाटित किया गया है।

नारी का स्वभाव सम्भ्रान्त माना गया है। गन्धोत्कट अपने मृत पुत्र को जलाकर दैवीय शक्ति के द्वारा सत्यन्धर पुत्र जीवन्धर को अपनी पत्नी के पास ले जाता है और कृत्रिमता से क्रोधपूर्वक कहता है कि अरी पगली! तूने परीक्षा किए बिना ही जीवित पुत्र को मरा हुआ क्यों कह दिया—

जीवन्तमंरयात्मजमद्यमत्ते बिना परीक्षां मृतकं किमात्थ ।१।६३

अथवा ठीक ही है जिसका चित्त स्वभावतः सम्भ्रान्त रहता है ऐसी स्त्रियाँ यदि जीवन्तकुमार को मृत समझने लगें तो इसमें क्या आश्चर्य—

यद्वा सम्भ्रान्तचित्तानां बनितानां स्वभावतः।
युक्तं न किं कुमारस्य मारान्तत्वप्रकल्पनम्।

जीवन्धर चम्पू में विद्याधरी का नियोजन कर महाकवि हरिचन्द्र ने यह भी उद्घाटित किया कि एक साधारण स्त्री अन्य पुरुष के साथ किस प्रकार अपने को वञ्चित कर सम्बन्ध स्थापित करती है। जीवन्धर के मुख से कवि ने नारियों की इस प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया है। वे कहते हैं कि मृगनयनी स्त्रियों का चित्त वज्र से भी अधिक कठोर होता है, वचन का प्रचार पुष्प से भी अधिक मृदुल होता है, कृत्यं अपने केश से भी अधिक वक्र होते हैं, इसलिए विद्वान उनका विश्वास नहीं करते—

वज्रात्कठोरतर मेणदृशां हि चित्तं
पुष्पादतीव मृदुलोवचन प्रचार।
कृत्यं निजालक कुलादपि वक्ररूपं
तस्माद् बुधाः सुनयनां न हि विश्वसन्ति ॥

महाकवि हरिचन्द्र और भी कहते हैं कि स्त्री का मुख कफ का भण्डार है परन्तु मूर्ख कवि उसे चन्द्रमा के समान बताते हैं। दोनों नेत्र मल से आपूर हैं परन्तु मूर्ख कवि उन्हें विकसित नील कमल के समान सुशोभित कहते हैं आदि-आदि। वस्तुतः यह राग का उद्रेक ही है जो कवि-प्रतिभा उसमें सौन्दर्य देखा करती है।

यथार्थतः नीति की उपेक्षा कर जो नारी निन्दनीय कृत्य करती है उसके प्रति कवि की उक्तियों के अनुरूप दूषित वचन कहना असङ्गत न होगा। इसके विपरीत यदि वह आदर्श की स्थापना करती है तो गुण-प्रसाधन की ओट में अवगुण निकर भी छिप जाता है और वह अपना व अपने परिवार का जीवन समुज्ज्वल बनाने में सहायक होती है। कवि ने जीवन्धर चम्पू में जहां विद्याधरी के चरित्र के माध्यम से चरित्र भ्रष्ट स्त्रियों के स्वभाव का दिग्दर्शन किया है जो अपने पति को वंचित कर अन्य पुरुष पर मुग्ध हो जाती हैं वहीं उसने ऐसी बानरी का भी चित्रण किया है जो अपने पति का सम्पर्क अन्य बानरी के साथ देखकर रुष्ट हो जाती हैं और तरुण बानर बड़ी दीनता के साथ उस बानरी को शान्त करने का प्रयत्न करता है परन्तु वह उसमें समर्थ नहीं होता। मृतक की तरह जब अपने आपको दीनता पूर्वक जमीन में लिटा देता है तो बानरी बानर को मृतक समझ कर भय से कांप उठती है और पास जाकर उसकी यह दशा दूर कर देती है। पतिव्रता स्त्रियों के स्वभाव की यह भद्र दृष्टि एवं सृष्टि है।

जीवन्धर चम्पू में नारी का बड़े मनोवैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण किया गया है। गुणों के साथ ही साथ अवगुणों का भी उद्घाटन किया गया है।

त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र

श्री हेमचन्द्राचार्य

[पूर्वानुवृत्ति]

गन्ध हस्ती के मद को सूँघकर जैसे अन्य हस्ती शान्त हो जाते हैं वैसे ही मन्त्री की बात सुनकर और तीर की लिपि पढ़कर मगधपति शान्त हो गए। वे उसी समय उस तीर को और उपहार लेकर राजा भरत के पास गए एवं उन्हें प्रणाम कर बोले—'हे पृथ्वीपति, पूर्णिमा के चन्द्र की भाँति भाग्यवश ही आज आपके दर्शन मिले हैं। भगवान ऋषभदेव ने जैसे तीर्थंकर होकर पृथ्वी पर विजय प्राप्त की है उसी प्रकार आप भी चक्रवर्ती बनकर पृथ्वी विजय कीजिए। जिस प्रकार ऐरावत हस्ती-सा अन्य हस्ती नहीं होता, वायु की तरह कोई बलवान नहीं होता, आकाश से अधिक कोई माननीय नहीं होता, उसी प्रकार आप जैसा भी कोई नहीं है। कान पर्यन्त खींच कर लायी हुई प्रत्यंचा से निकले आपके तीर को सहन करने में कौन समर्थ है? हम प्रमादियों पर दया कर आपने हमें कर्त्तव्य स्मरण करवाने दूत-से इस तीर को भेजा इसलिए हे नृप शिरोमणि, आज से आपकी आज्ञा को शिरोमणि की तरह हम धारण करेंगे। आपके द्वारा नियुक्त मैं पूर्व दिशा में आपके जयस्तम्भ की तरह निष्कपट भक्ति से इस मगध तीर्थ में वास करूँगा। यह राज्य, मेरा समस्त परिवार, मैं स्वयं और जो कुछ भी है सब आपका है। आप मुझे अपना सेवक मानकर आज्ञा दीजिए।'

ऐसा कहकर उसने वह तीर, तीर्थ का जल, मुकुट और कुण्डल उपहार में दिए। राजा भरत ने उन्हें ग्रहणकर मगधपति का सत्कार किया। कहा भी गया है, महान् व्यक्ति सेवा में तत्पर मनुष्य पर कृपा ही करते हैं। फिर इन्द्र जैसे अमरावती जाता है उसी प्रकार से चक्रवर्ती भरत रथ को घुमाकर जिस पथ से आए थे उसी पथ से होते हुए छावनी लौट गए। रथ से उतर कर स्नान कर परिवार सहित उन्होंने अष्टम तप का पारना किया। तदुपरान्त मगधपति पर विजय प्राप्ति के लिए चक्रवर्ती भरत ने चक्र प्राप्ति के उपलक्ष्य में जैसे अष्टान्हिका उत्सव किया था उसी प्रकार का उत्सव खूब धूमधाम से किया। उत्सव समाप्ति पर वह तीक्ष्ण चक्र मानों सूर्य रथ से ही निकला हो इस प्रकार तेजी से आकाश पथ पर चला और दक्षिण दिशा में वरदाम तीर्थ की ओर अग्रसर हुआ। व्याकरण में प्र-आदि उपसर्ग जैसे धातु के पीछे-पीछे चलते हैं चक्रवर्ती भरत भी उसी प्रकार चक्र के पीछे-पीछे चले।

एक योजन पथ प्रतिदिन अतिक्रम कर चक्रवर्ती भरत दक्षिण समुद्र तट पर इस प्रकार पहुँचे जैसे राजहंस मान सरोवर पर पहुँचता है। इलायची, लवंग, चिरौंजी और कक्कोल वृक्ष बहुल दक्षिण समुद्र के तट पर सैनिकों के स्कन्धावार स्थापित किए गए। महाराज की आज्ञा से वर्द्धकी रत्न ने पूर्व समुद्र तट की भाँति यहाँ भी निवास स्थान और पौषधशाला का निर्माण किया। राजा भरत ने वरदाम तीर्थ के देवों को हृदय में धारण कर अष्टम तप किया। पौषध पूर्ण होने पर पौषधशाला से निकल कर धनुर्धारियों के अग्रणी चक्रवर्ती ने कालपृष्ठ नामक धनुष धारण कर स्वर्ण निर्मित रत्न जड़ित एवं जल लक्ष्मी के निवास गृह तुल्य रथ पर आरोहण किया। देव से जैसे मन्दिर शोभित होता है उसी प्रकार सुन्दराकृति महाराज भरत के उपवेशन से रथ सुशोभित हुआ। अनुकूल पवन से पताकाएँ आकाश को जिस प्रकार मण्डित करती हैं उसी प्रकार उस उत्तम रथ ने जहाज की तरह समुद्र जल में प्रवेश किया। रथ को नाभि पर्यन्त समुद्र जल में ले जाकर सारथी ने लगाम खींची। घोड़े खड़े हो गए, रथ रुक गया। फिर आचार्य जैसे शिष्य को नम्र करते हैं उसी प्रकार पृथ्वीपति ने धनुष को नम्र कर प्रत्यंचा चढ़ाई। संग्राम रूपी नाटक के प्रारम्भ के सूत्राधार की भाँति और मृत्यु आह्वान मन्त्र की भाँति धनुष टंकार किया। ललाटकृत तिलक लक्ष्मी अपहरण कारी तीर, तूणीर से बाहर निकाला और प्रत्यंचा पर लगाया। चक्र भ्रम उत्पन्नकारी उस धनुष के मध्य भाग में नाभि का भ्रम उत्पन्न करने वाले उस तीर को महाराज ने कान तक खींचा। कर्ण पर्यन्त खींचा तीर जैसे महाराज को पूछ रहा था बोलिए—अब मैं क्या करूँ? फिर महाराज ने उस तीर को वरदामपति की ओर निक्षेप किया। आकाश को उज्ज्वल कर जाते हुए उस तीर को देखकर पर्वत वज्र के भ्रम से, सर्प गरुड़ के भ्रम से और समुद्र बड़वानल के भ्रम से भयभीत हो गया। बारह योजन पथ अतिक्रम कर वह तीर विद्युत की भाँति जाकर वरदामपति की सभा में गिरा। शत्रु प्रेरित घातक की तरह उस तीर को गिरते देखकर वरदामपति क्षुब्ध हो गए और उच्छ्वसित समुद्र की तरह उद्भ्रान्त भृकुटि से तरंगित होकर उत्कट शब्दों में बोल उठे :

'अरे, यह कौन है जिसने ठोकर मारकर सोते हुए सिंह को जगाया है? मृत्यु ने किसका आह्वान किया है? कुष्ठ ग्रस्त की तरह आज किसके जीवन में वैराग्य जागा है जिसने साहस कर मेरी सभा में तीर निक्षेप किया है? इसी तीर से मैं तीर निक्षेप करने वाले का प्राण हरण करूँगा।

उसने क्रोध पूर्वक उस तीर को उठाया। मगधाधिपति की भाँति वरदामपति

ने भी उस तीर पर लिखी लिपि पढ़ी। उस लिपि को पढ़कर वह उसी प्रकार शान्त हो गया जैसे सर्प-दमन औषधि से सर्प। वह बोला—'भेटक जिस भाँति काले साँप को चपेट में लेने को प्रस्तुत होता है, बकरी अपने सींगों से हाथी पर प्रहार करने की इच्छा करती है, हस्ती जैसे दन्ताघात से पर्वत उखाड़ने का प्रयास करता है उसी प्रकार मन्दगति मैं भी भरत चक्रवर्ती से युद्ध करने की इच्छा करता हूँ।'

फिर यह सोचकर कि कुछ अनर्थ न हो जाए उसने सेवकों को उपहार लाने का आदेश दिया। अनेक उपहारों को लेकर वह भरत चक्रवर्ती के पास जाने को उसी भाँति निकला जैसे इन्द्र ऋषभध्वज के पास जाता है। वहाँ जाकर चक्रवर्ती को नमस्कार करने के पश्चात् वह बोला—'हे पृथ्वी के इन्द्र, आपका दूत-सा आगत तीर पाकर मैं यहाँ आया हूँ। आप स्वयं यहाँ आए फिर भी स्वतः प्रवृत्त होकर मैं आपके सम्मुख उपस्थित नहीं हुआ। मुझ ऐसे मूर्ख को आप क्षमा प्रदान करें। कारण अज्ञानता दोष को आवृत्त कर देती है। हे स्वामी, क्लान्त जिस प्रकार विश्राम स्थान पाए, पिपासार्त्त जलपूर्ण सरोवर पाए मुझ ऐसे स्वामीहीन ने भी उसी प्रकार आप-सा स्वामी प्राप्त किया है। हे पृथ्वीपति, समुद्र तट पर जिस तरह वेलाधर पर्वत रहता है उसी प्रकार मैं भी आप द्वारा रक्षित होकर आपका आज्ञानुवर्ती बना रहूँगा।

ऐसा कहकर वरदामपति ने उस तीर को इस प्रकार महाराज भरत के सम्मुख रखा मानो वह उसके पास सुरक्षा पूर्वक रखा हुआ था। जैसे सूर्य कान्ति से ही गुंथा हुआ है ऐसा एक स्वकान्ति से दिक् समूह को प्रकाशकारी रत्नमय कटि सूत्र, यश समूह-सा चिरकाल से संचित मुक्ता समूह उसने राजा भरत को उपहार में दिया। जिसकी उज्ज्वल कान्ति प्रकाशित हो रही है ऐसे रत्नाकर का सर्वस्व रत्न समूह भी उसने महाराज भरत को उपहार स्वरूप प्रदान किया। उन सभी वस्तुओं को ग्रहण कर महाराज भरत ने वरदामपति को अनुगृहीत किया और वह कीर्त्तिमान बने इस प्रकार से उसे वहाँ नियुक्त कर दिया। फिर कृपा पूर्वक वरदामपति को विदा देकर भरत स्व स्कन्धावार में लौट आए।

रथ से उतर कर उस राजचन्द्र ने परिजनों सहित अष्टम तप का पारना किया और वहीं वरदामपति के लिए अष्टाह्निका महोत्सव किया। कारण स्वामी, लोगों के मध्य प्रतिष्ठित करने के लिए अपने आत्मीय जनों का सत्कार करते हैं।

तदुपरान्त पराक्रम में द्वितीय इन्द्र-से भरत चक्रवर्ती ने चक्र का अनुसरण करते हुए पश्चिम प्रभास तीर्थ की ओर गमन किया। सैनिकों की पदोत्थित धूल से आकाश और पृथ्वी को आपूरित करते हुए बहुत दिनों पश्चात् उन्होंने पश्चिम समुद्रतट पर अपना स्कन्धावार स्थापित किया। वह तटभूमि सुपारी, ताम्बूल और नारियलों के वृक्षों से पूर्ण थी। वहाँ भी प्रभासपति के उद्देश्य से अष्टम तप कर पूर्वानुसार पौषधशाला में जाकर पौषध व्रत ग्रहण किया। पौषध के अन्त में द्वितीय वरुण की भाँति रथ पर बैठकर समुद्र में प्रवेश किया। चक्र की नाभि पर्यन्त रथ को जल में ले जाकर रथ स्थापित कर धनुष पर प्रत्यंचा चढ़ायी फिर जयलक्ष्मी के क्रीड़ा करने की वीणा रूप धनुष की लकड़ी की तन्त्री के समान प्रत्यंचा को अपने हाथों से उच्च स्वर से शब्दायमान किया। समुद्र तट स्थित बेंत वृक्ष तुल्य तूणीर से तीर बाहर कर छिला पर इस प्रकार स्थापित किया मानों अतिथि को आसन पर बैठा रहे हों। सूर्य बिम्ब से खींचकर बाहर लायी किरणों की भाँति वह तीर उन्होंने प्रभासपति की ओर निक्षेप किया। वायु की भाँति तीव्र वेग से बारह योजन समुद्र अतिक्रम कर आकाश को उज्ज्वल करता हुआ वह तीर प्रभासपति की सभा में जाकर गिरा। तीर देखकर प्रभासपति क्षुब्ध हो उठे किन्तु उस पर लिखित लिपि को पढ़ कर विभिन्न रसों को प्रकट करने वाले नट की भाँति शीघ्र ही शान्त हो गए। फिर वह तीर और उपहार लेकर प्रभासपति चक्रवर्ती के निकट आए एवं उन्हें नमस्कार कर बोले—'हे देव, आप जैसे स्वामी से भासित होकर मैं आज ही वास्तविक रूप में प्रभास बना हूँ कारण सूर्य किरण से ही कमल कमल बनता है। हे प्रभु, मैं पश्चिम दिशा में सामन्त राजा की भाँति आज से सर्वदा पृथ्वी शासनकारी आपकी आज्ञा में रहूँगा।'

ऐसा कहकर प्रभासपति ने उस तीर को उसी प्रकार महाराज भरत को दिया जैसे युद्ध विद्या अभ्यासकारी का तीर भृत्य उठाकर लाता है और दे देता है। उसी के साथ मूर्तिमान तेज-सा वलय, बाजू बन्ध, मुकुट, हार एवं अन्य वस्तुएँ और धन सम्पत्ति उपहार में प्रदान किए। उसे आश्वस्त करने के लिए भरत ने वे सभी वस्तुएँ स्वीकार कर लीं। कारण भृत्य का उपहार स्वीकार करना प्रभु की प्रसन्नता का सूचक होता है। फिर आलवाल में जिस प्रकार वृक्ष रोपित किया जाता है उसी प्रकार प्रभासपति को वहाँ स्थापित कर शत्रु नाशक वे नृपति स्व-स्कन्धावार को लौट आए। कल्पवृक्ष से गृही रत्न द्वारा प्रस्तुत आहार से उन्होंने अष्टम तप का पारना किया। फिर प्रभासपति के लिए अष्टाह्निका उत्सव किया। क्योंकि आरम्भ में अपने सामन्त का भी आदर करना उचित होता है।

जिस प्रकार प्रदीप के पीछे आलोक जाता है उसी प्रकार चक्र के पीछे-पीछे चलते हुए भरत चक्रवर्ती समुद्र के दक्षिणी तट स्थित सिन्धु नदी के कूल पर आ पहुँचे। उसके किनारे-किनारे पूर्व की ओर जाकर सिन्धु देवी के प्रासाद के पास स्कन्धावार डाला। वहाँ सिन्धु देवी को स्मरण कर अष्टम तप किया। उससे पवन वेग से जैसे लहरें उठती हैं उसी प्रकार सिन्धु देवी का आसन कम्पित हुआ। अवधि ज्ञान से यह जानकर कि चक्रवर्ती आए हैं अनेक दिव्य उपहार लेकर उनकी पूजा और सम्मान करने के लिए वह सम्मुख उपस्थित हुई। वह आकाश से जय-जय शब्द से आशीर्वाद देती हुई बोली—हे चक्री, मैं आपकी सेविका बनकर यहाँ रहती हूँ। आप आज्ञा दीजिए, मैं उसका पालन करूँगी। फिर उसने लक्ष्मी देवी के सर्वस्व सम्पद स्वरुप रत्न भरे एक हजार आठ कलश, कीर्त्ति और लक्ष्मी जिस पर एक साथ बैठायी जा सके ऐसे दो रत्न भद्रासन, अनन्तनाग के मस्तक स्थित मणियों द्वारा निर्मित ऐसे देदीप्यमान रत्नमय भुजबन्ध, मध्यभाग में सूर्य की कान्ति को ही मानो बैठा दिया हो ऐसे वलय और मुट्ठी में समा जाने वाले ऐसे दिव्य सुकोमल वस्त्र चक्रवर्ती को उपहार में दिए। सिन्धु-राज की भाँति महाराज भरत ने समस्त द्रव्य ग्रहण कर लिए और मधुर वाक्यालाप से देवी को विदा किया। फिर पूर्णिमा के चाँद जैसे सुवर्ण पात्रों में अष्टम तप का पारना किया और वहाँ देवी का अष्टाह्निका महोत्सव कर चक्र प्रदर्शित पथ पर प्रयाण किया।

उत्तर और पूर्व दिशा के मध्य (ईशान कोण) चलते-चलते अनुक्रम से वे दोनों भरतार्द्ध की मध्य सीमा रूप वैताढ्य पर्वत के निकट जा पहुँचे। उस पर्वत के दक्षिणी भाग में जैसे कोई नवीन द्वीप हो ऐसा लम्बाई-चौड़ाई से सुशोभित स्कन्धावार सन्निवेशित किया गया। पृथ्वीपति ने वहाँ अष्टम तप किया। इससे वैताढ्य दिक्कुमार का आसन कम्पित हुआ। अवधिज्ञान से वे जान गए कि भरत क्षेत्र में प्रथम चक्रवर्ती उत्पन्न हुए हैं। तब वे आकाश में स्थित होकर बोले—हे प्रभु, आपकी जय हो। मैं आपका सेवक हूँ अतः जो आज्ञा देनी हो दीजिए।' तत्पश्चात् मानों वृहद् भण्डार ही खोल दिया हो इस प्रकार बहुमूल्य रत्न, रत्नों के अलंकार, दिव्य वस्त्र और प्रताप सम्पत्ति के क्रीड़ा-स्थल तुल्य भद्रासन उन्होंने चक्रवर्ती को उपहार में दिए। पृथ्वीपति ने उनकी समस्त वस्तुओं को स्वीकार कर लिया। तदुपरान्त महाराज ने उन्हें बुलवाकर परिपूर्ण रूप से आदर सत्कार कर विदा किया। कहा भी गया है—महापुरुष अपने आश्रित सामान्य व्यक्तियों की भी अवज्ञा नहीं करते। अष्टम

तप का पारना कर महाराज भरत ने वहाँ वैताढ्य देव के लिए अष्टाह्निका महोत्सव किया।

वहाँ से चक्ररत्न तमिस्रा गुहा की ओर अग्रसर हुआ। राजा भी पदान्वेषी की तरह उसके पीछे-पीछे चलने लगे। अनुक्रम से वह तमिस्रा गुहा के समीप पहुँचा। वहाँ सैन्य के लिए स्कन्धावार स्थापित किया गया। स्कन्धावार ऐसा लग रहा था मानो विद्याधर नगर ही वैताढ्य पर्वत से नीचे उतर आया हो। उस गुहा के अधिष्ठायक कृतमाल देव को स्मरण कर भरत ने अष्टम तप किया। देव का आसन कम्पित हुआ। अवधि ज्ञान से उन्होंने चक्रवर्ती का आगमन जाना। बहुत दिनों पश्चात् आगत गुरु की तरह चक्रवर्ती रूपी अतिथि की पूजा करने वे आए और बोले—'हे स्वामी, इस तमिस्रा गुहाके द्वार पर मैं आपके द्वारपाल की तरह अवस्थान करता हूँ। ऐसा कहकर उसने भरत का सेवकत्व अंगीकार कर स्त्रीरत्न के योग्य चौदह तिलक और दिव्य अलंकार समूह चक्रवर्ती को उपहार में दिए। साथ ही मानों पहले से ही महाराज के लिए रखे हों ऐसी उनके योग्य दिव्य माल्य और दिव्य वस्त्र दिए। चक्री ने भी वे समस्त स्वीकार कर लिए; कारण कृतार्थ राजा भी दिग्विजय लक्ष्मी के चिह्न रूप दिक्पतियों से प्राप्त उपहारों का परित्याग नहीं करते। अध्ययन के अन्त में उपाध्याय जिस प्रकार शिष्य को छुट्टी देते हैं उसी प्रकार भरतेश्वर ने उसे बुलवाकर उसके साथ शिष्ट व्यवहार कर विदा दी। फिर राजा भरत ने मानों उनके अंश ही हों व सर्वदा साथ में बैठकर भोजन करने वाले, ऐसे राजकुमारों के साथ नीचे पात्र रखकर पारना किया। फिर कृतमाल देवों के लिए अष्टान्हिका महोत्सव किया। बोला भी गया है—नम्रता के द्वारा जिसे अपना बनाया गया है उसके लिए प्रभु क्या नहीं करते?

द्वितीय दिन महाराज ने सुषेण नामक सेनापति को बुलवाया। तत्पश्चात् इन्द्र जिस प्रकार नैगमेषी देव को आदेश देता है उसी प्रकार उन्हें आदेश देते हुए बोले—'तुम चर्म रत्न द्वारा सिन्धु नदी में उतर कर सिन्धु समुद्र और वैताढ्य पर्वत के मध्य स्थित दक्षिण सिन्धु निष्कुट (सिन्धु नदीके दक्षिण तटवर्ती उद्यान-सा प्रदेश) को जय करो और बदरी फल की तरह वहाँ के अधिवासी म्लेच्छों का आयुध रूपी लकड़ी से झाड़ कर चर्म रत्न का पूर्ण फल प्राप्त करो।'

सुषेण सेनापति ने चक्रवर्ती की आज्ञा स्वीकार कर ली। उन्होंने जैसे वहीं जन्म ग्रहण किया हो इस प्रकार वहाँ के ऊँचे-नीचे समस्त भागों के दुर्गम स्थानों में जाने के समस्त पथों से वे परिचित थे। वे म्लेच्छ भाषा के ज्ञाता, सिंह के समान पराक्रमी, सूर्य-से तेजस्वी, बृहस्पति-से बुद्धिमान और

सर्वलक्षण युक्त थे। वे तत्काल अपने स्थान पर आए। मानों उन्हीं का प्रतिबिम्ब हो ऐसे समस्त राजाओं को चलने का आदेश दिया। फिर स्नान-पूजा कर पर्वत से उच्च गज रत्न पर आरूढ़ हुए। उस समय उन्होंने स्वल्प किन्तु बहुमूल्य अलंकार पहने। कवच धारण किया। प्रायश्चित और कौतुक मंगल किया। उनके कण्ठ स्थित अन्य रत्नों के दिव्य हार ऐसे सुशोभित हो रहे थे मानो जयलक्ष्मी ने उनके गले में अपनी बाहुलता अर्पण कर दी है। पट्ट हस्ती की तरह वे पट्ट चिह्नों से सुशोभित थे। उनकी कमर में मूर्तिमान शक्ति की तरह एक कटार थी। उनकी पीठ पर सरलाकृति स्वर्ण निर्मित दो तूणीर थे। वे दोनों ऐसे लगते थे मानो पीछे से युद्ध करने के लिए दो वैक्रिय हाथ हों। वे गणनायक दण्डनायक श्रेष्ठी सार्थवाह सन्धिपाल और अनुचरों से युवराज की तरह परिवृत थे। उनका अग्रासन इस प्रकार निश्चल था मानो जैसे उस आसन के साथ ही उन्होंने जन्म ग्रहण किया हो। श्वेत छत्र और चँवर शोभित देवोपम वे सेनापति स्व पदांगुष्ठ द्वारा हस्ती को चला रहे थे। चक्रवर्ती की अर्द्ध सैन्य सहित वे सिन्धु तट पर आए। सैनिकों की पदचाप से उड़ने वाली धूल से वह तट ऐसा प्रतीत होता था मानों वहाँ सेतुबन्ध किया गया हो। सेनापति ने अपने हाथ से चर्म रत्न को जोकि बारह योजन तक विस्तृत हो सकता है, जिसमें सुबह बोया हुआ बीज सन्ध्या को उग जाता है, जो नदी, झील, समुद्र को अतिक्रम करने में समर्थ है उसे स्पर्श किया। स्वाभाविक रूप से उसके दोनों प्रान्त विस्तृत हो गए। सेनापति ने उसे उठाकर जल पर तेल की भाँति तैरा दिया। फिर उस पर वे सैन्य सहित नदी के उस पार गए।

सिन्धु नदी के समस्त दक्षिणी प्रदेश को जय करने के लिए वे प्रलय कालीन समुद्र की तरह वहाँ फैल गए। धनुष के निर्घोष से और युद्ध के कौतुहल में ही लीला करते हुए उन्होंने सिंह की तरह सिंहल देश को जीत लिया। बर्बरों को क्रीतदासों की तरह अपने अधीन कर टंकनों के अश्वों की तरह राज चिन्ह से अंकित कर दिया। जल रहित रत्नाकर की भाँति माणिक्य पूर्ण यवन द्वीप को उस नरकेशरी ने खेल ही खेल में जय कर लिया। उन्होंने कालेमुख जाति के म्लेच्छों को भी जीत लिया। यह देखकर भोजन के बाद भी उनकी अंगुलियाँ मुँह में ही रहने लगीं। इस प्रकार सेनापति सर्वत्र फैल जाने के कारण जोनक नामक म्लेच्छगण वायु से जैसे वृक्ष परांगमुख हो जाते हैं उसी प्रकार परांगमुख हो गए। सपेरा जिस प्रकार सभी प्रकार के सर्पों को वश में कर लेता है उसी प्रकार उन्होंने वैताढ्य पर्वत के निकटस्थ प्रदेशों

में रहने वाले म्लेच्छों की समस्त जातियों को वश में कर लिया। प्रौढ़ प्रताप को अनिवार्य रूप से प्रसारित करने वाला वह सेनापति वहाँ से आगे बढ़कर सूर्य जिस प्रकार समस्त आकाश में फैल जाता है उसी प्रकार उसने कच्छ देश के समस्त भू-भाग को आक्रान्त कर लिया अर्थात् जय कर लिया। सिंह जिस प्रकार समस्त जंगल को पदानत रखता है उसी प्रकार वह भी समस्त निष्कूट प्रदेश को पदानत कर समतल भूमि पर स्वस्थतापूर्वक रहने लगा। पति के पास जिस प्रकार पत्नी जाती है उसी प्रकार म्लेच्छ देश के राजागण उपहार लेकर बड़े भक्ति भाव से सेनापति के पास जाने लगे। किसी ने स्वर्णगिरि के शिखर परिमाण रत्नराशि दी तो किसी ने चलमान विन्ध्यपर्वत तुल्य हस्ती दिए। किसी ने सूर्याश्व को भी परास्तकारी अश्व दिए, किसी ने अंजन निर्मित देवताओं के रथ तुल्य रथ दिए। इसके अतिरिक्त अन्य भी जो सारभूत वस्तुएँ थीं वे सभी उन्होंने उपहार स्वरूप दीं। कहा भी गया है कि पर्वत से लेकर नदी के पथ पर निर्गत सभी रत्न भी रत्नाकर में ही चले जाते हैं। इस भाँति उपहार देकर वे सेनापति से बोले—'आज से हम आपके आज्ञा पालक बनकर भृत्य की तरह यहाँ रहेंगे।' सेनापति ने सब का यथोचित सत्कार कर विदा किया। फिर जिस प्रकार वे आए थे उसी प्रकार सुखपूर्वक सिन्धु के उस पार लौट गए। कीर्ति रूपी लता के दोहद तुल्य म्लेच्छों से प्राप्त समस्त उपहार सेनापति ने चक्रवर्ती को समर्पित किए। कृतार्थ चक्री ने भी सेनापति का बहुमान कर विदा दी। वे सहर्ष अपने स्थान को लौट गए।

राजा भरत वहाँ अयोध्या की भाँति ही सुखपूर्वक रहने लगे। कारण सिंह जहाँ भी जाता है वहीं उसका निवास स्थान बन जाता है। एक दिन उन्होंने सेनापति को बुलाकर आदेश दिया—गुफा का दरवाजा खोलो। सेनापति ने उनकी आज्ञा को माला की भाँति मस्तक पर धारण किया और तमिस्रा गुफा के द्वार पर आकर उपस्थित हुए। तमिस्रा के अधिष्ठाता कृतमाल देव को स्मरण कर उन्होंने अट्ठम तप किया। क्योंकि समस्त सिद्धियों की मूल तपस्या ही होती है। तदुपरान्त स्नान कर श्वेत वस्त्र रूपी पंख धारण कर इस प्रकार स्नानागार से निकले जैसे राजहंस स्नान कर सरोवर से बाहर निकलते हैं। फिर सुन्दर नील कमल-सा स्वर्ण धूपदान हाथ में लेकर तमिस्रा के द्वार पर आए। प्रथम उन्होंने द्वार को प्रणाम किया। कारण शक्तिवान महान् पुरुष पहले सामनीति प्रयोग में लाते हैं। वहाँ वैताढ्य पर्वत पर विचरने वाली विद्याधर पत्नियों को स्तम्भन करने के लिए

औषध रूप महार्द्धिक अष्टान्हिका महोत्सव किया एवं मान्त्रिक जैसे मंडल तैयार करता है उसी प्रकार सेनापति ने वहाँ अखण्ड अक्षतों से अष्ट मांगलिकों की रचना की। फिर इन्द्र के वज्र की भाँति शत्रुनाशकारी चक्रवर्ती का दण्डरत्न हाथ में लेकर दरवाजे पर आघात करने के लिए सात-आठ कदम पीछे हटे। कारण हाथी भी प्रहार करने के लिए पीछे हटता है। फिर सेनापति ने उसी दण्डरत्न से दरवाजे पर चोट की। उससे समस्त गुफा यन्त्र की भाँति ध्वनित हुई और उसी मुहूर्त्त में वैताढ्य पर्वत के मुद्रित नेत्र की भाँति मजबूती से बन्द वे वज्र निर्मित किवाड़ खुल गए। दण्ड के आघात से खुलते हुए वे किवाड़ इस प्रकार आवाज कर रहे थे मानो वे क्रन्दन कर रहे हों। उत्तर दिशा के भरत खण्ड को जय करने जाने में मंगल रूप उन किवाड़ों के खुल जाने की बात सेनापति ने जाकर चक्रवर्ती से कही। यह सुनकर हस्तीरत्न पर आरुढ़ होकर महापराक्रमी महाराज भरत ने चन्द्रमा की भाँति तमिस्रा गुफा में प्रवेश किया।

प्रवेश करने के समय नरपति ने चार अंगुल प्रमाण और सूर्य-सा प्रकाशवान मणिरत्न ग्रहण किया। वह एक हजार यक्षों द्वारा अधिष्ठित था अर्थात् एक हजार देव उसकी रक्षा करते थे। उस रत्न को मस्तक की चूड़ा पर बाँध लेने से पशु-पक्षी मनुष्य और देवताकृत उपसर्ग नहीं होते। इसके अतिरिक्त उस रत्न के प्रभाव से सूर्य द्वारा जिस प्रकार अन्धकार दूर हो जाता है उसी प्रकार समस्त दुःख नष्ट हो जाते हैं और शस्त्र के आघात की भाँति समस्त रोग भी दूर भाग जाते हैं। सुवर्ण कलश पर जिस प्रकार सुवर्ण ढक्कन लगाया जाता है उसी प्रकार वह रिपुनाशक राजा ने उस रत्न को हस्ती के दाहिने कुम्भ स्थल पर रखा। पीछे चलमान सेना सहित चक्र का अनुसरण करते हुए सिंह की भाँति उस गुफा में प्रवेश करते हुए नरकेशरी ने चार अंगुल प्रमाण अन्य काकिणी रत्न भी ग्रहण किया। वह रत्न सूर्य, चन्द्र और अग्नि-सा कान्ति सम्पन्न था। उसका आकार अधिकरणी-सा था। एक हजार यक्ष उसके रक्षक थे। आठ सुवर्ण मुद्राओं-सा उसका प्रमाण था। उसमें छः पत्र थे, बारह कोण थे और नीचे का भाग समतल था। वह मान, उन्मान और प्रमाण युक्त था। उसकी आठ कर्णिकाएँ थीं। बारह योजन पर्यन्त अन्धकार दूर करने में वह समर्थ था। गुफा के मध्य दोनों ओर एक-एक योजन के बाद गो-मूत्र के आकार में अर्थात् एक दाहिनी ओर दूसरा बायीं ओर इस प्रकार काकिणी रत्न के द्वारा मण्डल तैयार करते-करते चक्रवर्ती अग्रसर हुए। प्रत्येक मण्डल पाँच सौ धनुष विस्तृत और एक योजन तक प्रकाश करने में

समर्थ था। इन मण्डलों की संख्या ४९ थी। जब तक कल्याणकारी चक्रवर्ती पृथ्वी पर वर्त्तमान रहते हैं तब तक गुफा का दरवाजा खुला रहता है।

चक्र के पीछे गमन करते हुए चक्रवर्ती और चक्रवर्ती के पीछे गमन करती हुई चक्रवर्ती की सेना मण्डल के आलोक में उस गुफा में अग्रसर होती गयी। चक्रवर्ती की चलमान सेना उस गुफा में उसी प्रकार शोभा पाने लगी जिस प्रकार असुरादि सैन्य से रत्नप्रभा का मध्य भाग शोभित होता है। मन्थन दण्ड से मन्थन पात्र में जिस प्रकार शब्द होता है। उसी प्रकार चलमान चक्र और सेना से वह गुफा गुंजित होने लगी। जहाँ कोई नहीं चलता ऐसा गुफा पथ रथ चक्रों से लीकवाला और घोड़ों के खुरों से उखड़ा कंकरों से नगर पथों जैसा ही बन गया। सैन्य द्वारा वह गुफा लोक नालिका की भाँति टेढ़ी-मेढ़ी हो गयी। क्रमशः चक्रवर्ती उस गुफा के मध्य भाग में निम्नांग के वस्त्र पर पहनी हुई कटि मेखला-सी उन्मग्ना और निमग्ना नामक दो नदियों के निकट पहुँचे। उन दोनों नदियों को देखकर लगता मानो दक्षिण और उत्तर भरतार्द्ध से आए लोगों के लिए वैताढ्य पर्वत ने नदी रूप दो आज्ञा रेखा खींच दी है। उन दोनों नदियों के मध्य उन्मग्ना में पाषाण शिलाएँ तूम्बे के खोल की तरह प्रवाहित होती और निमग्ना में तूम्बे के खोल भी पाषाण शिलाओं की भाँति डूब जाते। वे दोनों नदियाँ तमिस्रा गुफा की पूर्व प्राचीर से निर्गत होकर पश्चिम प्राचीर से होती हुई सिन्धु नदी में मिल जाती है। उस नदी पर वर्द्धकी रत्न ने एक अच्छा पुल तैयार किया। वह पुल वैताढ्य कुमार देवों की एकान्त स्थित विशाल शय्या-सा लगता था। वर्द्धकी रत्न ने क्षण भर में वह पुल तैयार कर दिया। कारण गेहाकार कल्पवृक्ष को गृह निर्माण में जितना समय लगता है वर्द्धकी रत्न को उतना भी नहीं लगता। उस पुल पर पत्थर इस प्रकार जड़ित किए गए थे लगता जैसे पूरा पुल एक ही पत्थर से बना हो। उसकी भूमि हाथ-सी समतल और वज्र-सी कठोर होने के कारण वह गुफा द्वार के दरवाजों द्वारा निर्मित लगती थी। उस दुस्तर नदी को चक्रवर्ती ने सैन्य सहित इस प्रकार स्वच्छन्द रूप से पार किया जैसे पथचारी सामान्य पथ का अतिक्रम करते हैं। महाराज सैन्य सहित अनुक्रम से उत्तर दिशा के मुख की भाँति गुफा के उत्तर द्वार के निकट उपस्थित हुए। उत्तर द्वार के दरवाजे के दोनों किंवाड़ दक्षिण द्वार की आवाज सुनकर भयभीत हो गए हों इस प्रकार तत्काल खुल गए। दरवाजा खुलने के समय जो सर-सर शब्द हुआ वह जैसे सेना को अग्रसर होने के लिए कह रहा था। दोनों किंवाड़ दीवालों से सटकर इस प्रकार खड़े हो गए मानों पहले वे कभी यहाँ थे ही नहीं

अचानक आ गए हैं। फिर सूर्य जिस प्रकार मेघ से बाहर निकलता है उसी प्रकार चक्रवर्ती के आगे चलता हुआ चक्र गुफा के बाहर निकला। उसके पीछे पृथ्वीपति भरत इस भाँति निकले जिस प्रकार पाताल के विवर से बलीन्द्र निकलता है। तदुपरान्त विन्ध्याचल की गुफा से निःशंक लीलायुक्त हस्ती जैसे बाहर निकलता है वैसे ही हस्तीयूथ निकला। समुद्र से निकलते हुए सूर्याश्वों का अनुसरण करते हुए सुन्दर घोड़े स्वच्छन्दता से बाहर निकले। धनाढ्य व्यक्ति की रथशाला से जैसे रथ निकलता है उसी प्रकार की ध्वनि से आकाश गुंजित करते रथ समूह निकले और स्फटिक मणि के विवर से जैसे सर्प निकलता है वैसे ही वैताढ्य पर्वत की उस गुफा से बलवान पद सेना बाहर निकली। इस प्रकार पचास योजन दीर्घ गुफा अतिक्रम कर महाराज भरत ने भरतार्द्ध जय करने के लिए उत्तर खण्ड में प्रवेश किया। उस खण्ड में आपात जाति के मतवाले भील निवास करते थे। वे पृथ्वी पर दानवों की भाँति धनवान, बलवान और तेजस्वी थे। उनके पास अपरिमित बड़ी-बड़ी अट्टालिकाएँ थीं, शैय्या आसन और वाहन थे, सोना चाँदी था। अतः लगता जैसे वे कुबेर के सगोत्रीय हों। उनके कुटुम्बी भी घनी थे। उनके पास दास-दासियाँ भी बहुत थीं। देवताओं के उपवन वृक्षों की भाँति कोई उन्हें नाश नहीं कर सकता था। वृहद् शकटों के भार वहन कारी बैलों की भाँति वे सर्वदा अनेक युद्धों में अपने बल का प्रदर्शन किया करते थे। जब भरतपति जबर्दस्ती यमराज की भाँति उन पर आ पड़े तब उनके अनिष्ट सूचनाकारी अनेक उत्पात घटित होने लगे। चक्रवर्ती की चलमान सैन्य के भार से दुःखी हो गयी हो इस प्रकार गृह और उद्यानों को कम्पित करती पृथ्वी काँपने लगी। चक्रवर्ती का दिगन्त विस्तृत महाप्रताप दिगन्तों में दावानल-सा प्रज्ज्वलित होने लगा। सैन्य द्वारा उत्थित पथ धूल से सभी दिशाएँ पुष्पिनी रमणियों की भाँति देखने लायक नहीं रहीं। क्रूर और कर्ण कटु शब्दकारी मकर जिस प्रकार समुद्र में कलह करता है उसी प्रकार दुष्ट पवन परस्पर कलह करता प्रवाहित होने लगा। जलती हुई मशालों की भाँति म्लेच्छ शिकारियों के लिए भय उत्पन्नकारी उल्का आकाश से पतित होने लगी। क्रोध से उद्धत बनी जमीन पर हाथों को पछाड़ रही हों ऐसी भयंकर शब्दकारी विद्युत आकाश में चमकने लगी और मृत्यु लक्ष्मी के छत्र की तरह चील और कौए यहाँ-वहाँ उड़ने लगे।

उधर सुवर्ण कवच, कुठार और बरछी की किरण माला से आकाश स्थित सहस्र किरण सूर्य को कोटि किरणकारी, उद्दण्ड, दण्ड, धनुष और मुद्गर से

आकाश को बड़े-बड़े दन्त विशिष्टकारी, ध्वजा में चित्रित व्याघ्र सिंह और सर्प के द्वारा आकाश में विचरण करती खेचरी रमणियों को भय प्रदर्शनकारी और वृहद्-वृहद् हस्ती रूप मेघ में दिक्समूह के अग्र भाग को अन्धकारमय-कारी राजा भरत अग्रसर होने लगे। उनके रथ के अग्रभाग में अंकित मकर मुख यमराज के मुख से स्पर्द्धा कर रहा था। वे अश्व खुरों के आघात से जैसे धरती को तोड़ रहे हैं और जय वाद्यों पर पतित आघात से जैसे आकाश को टुकड़े-टुकड़े कर रहे हैं ऐसा लगता था। अग्रगामी मंगल तारा में सूर्य जैसे भयंकर लगता है उसी प्रकार अग्रगामी चक्र से भरत भयंकर प्रतीत हो रहे थे।

उन्हें आते देख भीलगण अत्यन्त क्रुद्ध हो उठे और क्रूर ग्रहों की भाँति वे सभी एकत्रित होकर मानों चक्रवर्ती को हरण करने की अभिलाषा से इस प्रकार रोष में बोले—'साधारण मनुष्य की भाँति लक्ष्मी, लज्जा, धैर्य और कीर्ति रहित यह कौन व्यक्ति अल्प बुद्धि बालकों की तरह मृत्यु की इच्छा कर रहा है। जिसकी पुण्य चतुर्दशी क्षीण हो गयी है अर्थात् जो कृष्ण चतुर्दशी की भाँति क्षीण पुण्य हो गया है ऐसा लक्षणहीन यह व्यक्ति मानों मृग ने सिंह की गुफा में प्रवेश किया हो इस प्रकार हमारे देश में आया है। महापवन जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार इस उद्धत आकृति विशिष्ट विस्तीर्यमान व्यक्ति को हम भी छिन्न-भिन्न कर दसों दिशाओं में फेंक देंगे।'

इस प्रकार जोर से बोलते-बोलते शरभ जैसे मेघ के सम्मुख गर्जन करता है, दौड़ता है, उसी प्रकार वे राजा भरत से युद्ध करने के लिए प्रस्तुत होने लगे। किरातपतियों ने मछुओं की पीठ की हड्डियों द्वारा निर्मित अभेद्य कवच धारण किए। मस्तक पर खड़े केश वाला निशाचरों की सिर लक्ष्मी तुल्य बन्दरों के केश युक्त सिरस्त्राण पहने। युद्ध करने का अवसर पाने के आनन्द में उनके शरीर इस प्रकार फूलने लगे कि उनके कवचों के तार टूटने लगे। उनके खड़े केश वाले मस्तक से सिरस्त्राण खिसक-खिसक कर गिर रहे थे मानों मस्तक कह रहे थे हमारी रक्षा करने वाला कोई नहीं है। कुछ किरात क्रोधावेश में यमराज की भृकुटि की तरह वक्र और शृंग द्वारा निर्मित धनुष को सहज ही प्रत्यंचा पर रोपण करने लगे। कुछ किरात जय लक्ष्मी की लीला-शय्या तुल्य रण में दुर्वार और भयंकर तलवारें म्यान से बाहर निकालने लगे। कुछ किरात यम-राज के ल भ्राता तुल्य दण्ड को उठाने लगे। कोई-कोई धूमकेतु की भाँति भालों को आकाश में घुमाने लगे। कोई-कोई रणोत्सव में आमंत्रित प्रेत राजाओं को प्रसन्न करने के लिए मानों शत्रुओं को शूली पर चढ़ाएँगे इस प्रकार

त्रिशूल धारण करने लगे। कोई शत्रुरूपी पक्षियों का प्राण हनन करने के लिए बाज पक्षियों-सा लौह शैल्य हाथों में लेने लगे। कोई-कोई मानो आकाश को तोड़ना चाहते हैं इस प्रकार अपने-अपने उद्यत हाथों से मुद्गर घुमाने लगे। इस प्रकार युद्ध करने की इच्छा से सभी ने नाना प्रकार के अस्त्रों को धारण किया। कोई भी आदमी अस्त्र रहित नहीं था। युद्ध करने की इच्छा से जैसे वे एक आत्मा वाले हों ऐसे उन्होंने एक साथ भरत की सेना पर आक्रमण किया। शिलावृष्टिकारी प्रलयकालीन मेघों की भाँति शस्त्र वर्षा करते-करते म्लेच्छ गण महाराज भरत की सेना के अग्रभाग के साथ तीव्र युद्ध करने लगे। लगता था पृथ्वी से, दिक्मुख से, आकाश एवं चारों दिशाओं से आ-आकर अस्त्र गिरने लगे हैं। दुर्जनों की युक्ति जिस प्रकार सभी को विद्ध करती है इसी प्रकार राजा भरत की सेना में ऐसा कोई नहीं था जो उन भीलों के तीरों से विद्ध न हुआ हो। म्लेच्छों के आक्रमणों से चक्रवर्ती के अश्वारोही समुद्र की उत्ताल तरंग से नदी के अग्रभाग की तरंगे जिस प्रकार पीछे हट जाती हैं उसी प्रकार पीछे हटने लगी। म्लेच्छ रूपी सिंह के तीर रूपी श्वेत नखों से क्षत्-विक्षत् होकर चक्रवर्ती के हस्ती आर्त्त स्वर में भयंकर रूप से चिंघाड़ने लगे। म्लेच्छ वीरों के प्रचण्ड दण्ड युद्ध द्वारा बार-बार किए गए आघात से भरत की पदातिक सैन्य कन्दुक की भाँति उछल-उछल कर उत्पतित होने लगी। वज्राघात से पर्वत जैसे भग्न हो जाते हैं यवन सेना की गदा के प्रहार से चक्रवर्ती सैन्य के अग्रभाग के रथ भी उसी प्रकार भग्न हो गए। संग्राम रूप सागर में तिमिंगल जाति के मकर से मछलियाँ जिस प्रकार पीड़ित और त्रस्त होती हैं उसी प्रकार वे त्रस्त व पीड़ित होने लगीं।

अनाथों की भाँति पराजित अपनी सेना को देखकर राज्याज्ञा जैसे क्रोध ने सेनापति सुषेण को उत्तेजित कर दिया। उसके नेत्र और मुख लाल हो गए और क्षण मात्र में वे मनुष्य के रूप में साक्षात् अग्नि की भाँति ऐसे जाज्वल्यमान हो गए कि उनकी ओर देखा नहीं जा सका। राक्षसपति की भाँति वे विपक्ष की समस्त सैन्य को ग्रास कर लेने के लिए उद्यत हो गए। देह में उत्पन्न उत्साह के धारण सुवर्ण कवच वे बड़ी कठिनता से धारण कर सके और इस भाँति वे बैठे कि जैसे कोई दूसरी ही त्वचा हो। कवच धारण कर साक्षात् जय रूपी सुषेण सेनापति कमलापीड़ घोड़े पर सवार हुए। उस घोड़े की उच्चता ८० अंगुल और प्रशस्तता ६६ अंगुल और दैर्घ १०८ अंगुल था। उसका माथा हमेशा ३२ अंगुल से ऊपर रहता था। उसके बाहु अर्थात् सामने के पैर ४ अंगुल, जंघा १६ अंगुल और घुटनों तक ४ अंगुल का था और उसका खुर भी

था ४ अंगुल का। उसका मध्य भाग गोलाकार और आनत था। पीठ थी विशाल, आनत और आनन्द दायक। उसके रोएँ रेशम के सूते की तरह कोमल थे और देह पर श्रेष्ठ द्वादशावर्त थी। उस घोड़े के समस्त लक्षण अच्छे थे और कान्ति थी यौवन प्राप्त शुक पक्षी के पंखों-सी मरकत। उसके शरीर ने कभी चाबुक का स्पर्श नहीं किया कारण वह आरोही की इच्छानुसार चलता था। रत्न और स्वर्णमय वल्गा में मानों लक्ष्मी ने ही अपने दोनों हाथ उसके गले को अर्पण किए हैं ऐसा लगता था। उस पर लटकते स्वर्ण घुँघरू छुम-छुम आवाज कर रहे थे। इससे लगता कि मधुर ध्वनिकारी मधुकर सेवित कमल माल से वह पूजित हुआ है। उसका मुख ऐसा लगता था जैसे पाँच रंगों की मणियों से जड़ित स्वर्णालंकार की किरण द्वारा पताका चिह्न में अंकित हुआ है। मंगल तारिका में मण्डित आकाश की भाँति सुवर्ण कमल उसके ललाट देश पर तिलक रूप में सुशोभित थे। चामर के अलंकार से शोभित उसे देखकर लगता मानो उसने द्वितीय कर्ण धारण किए हैं। वह चक्रवर्ती के पुण्य प्रभाव से आकृष्ट सूर्य के उच्चैश्रवा अश्व की तरह सुशोभित था। उसके पैर वक्र-भाव से पड़ते जिससे लगता मानों वह क्रीड़ा कर रहा हो। उसमें एक लक्ष योजन अतिक्रम करने की शक्ति थी। उससे वह साक्षात् गरुड़ व पवन-सा लगता था। वह कर्दम जल पत्थर कंकर और धूल भरा विषम स्थान एवं पहाड़ गुफा आदि दुर्गम स्थान को अतिक्रम करने की शक्ति रखता था। चलने के समय उसके पैर जमीन पर बहुत कम पड़ते थे जिससे लगता मानो वह आकाश में उड़ रहा है। वह बुद्धिवान् और नम्र था। पाँच प्रकार की गति से उसने श्रम का जय कर लिया था। उसकी श्वास कमल-सी सुगन्ध युक्त थी।

[क्रमशः

जैन पत्र-पत्रिकाएँ : कहाँ/क्या

कुशल निर्देश ॥ जून १९८३

इस अंक में है 'श्री सहजानन्दघन जी महाराज का पत्र और वीरचर्या' (अनु० भँवरलाल नाहटा), 'हमारी सामाजिक व धार्मिक एकता का स्वरूप व उसके उपाय' (स्व० अगर चन्द जी नाहटा), 'अहिंसा संजमो तवो' (आर्या श्री मणिप्रभा श्री), 'विघ्नहर स्तोत्र' (अनु० भँवरलाल नाहटा)।

जिनवाणी ॥ जून १९८३

आचार्य श्री हस्तीमल जी के प्रवचनों के अतिरिक्त इस अंक में है 'तप : स्वरूप और प्रकार' (पी० एम० चोरड़िया), 'जैन मनस् दर्शन : कुछ पहलू' (डा० के० एल० शर्मा)।

जैन जगत ॥ जून १९८३

इस अंक में है 'राजस्थान का एक तिलस्मी जिनालय' (घनश्याम वर्मा)।

तीर्थंकर ॥ जून १९८३

सम्पादकीय के अतिरिक्त इस अंक में है 'पुण्य श्लोक पंडित जी' (मृदुला मेहता, अनु० काशीनाथ त्रिवेदी), 'क्रान्ति में भीतर से बदलना होता है' (बातचीत : डा० नेमीचन्द जैन/श्री जिनेन्द्र वर्णी), 'अर्द्धकथानक सम्पूर्ण कथानक' (बनारसी दास, अनु० राजकुमारी बेगानी), 'अन्तिम पृष्ठ चिन्तन के रूप में खत' (गणेश ललवानी)।

तुलसी प्रज्ञा ॥ अप्रैल-जून १९८३

जैन ज्योतिर्विशेषांक

इस अंक में है 'जिन कल्प एक परिशीलन' (साध्वी सिद्धप्रज्ञा), 'जैन सप्तभंगी में अवक्तव्य और उसका स्वरूप' (भिखारी राम यादव), 'जैन विद्या में पाश्चात्य विद्वानों का योगदान' (महावीर लाल गेलड़ा), 'जैन वैयाकरणों की यशस्वी परम्परा' (मांगीलाल मिश्र), 'भारतीय चिन्तन परम्परा में जैनों का योगदान' (डा० आनन्द मंगल वाजपेयी), 'आयारो : हिन्दी पद्यानुवाद' (मुनि मांगीलाल), 'Transcendental Consciousness' (Yuvacarya Sri Mahaprajna), 'The Jaina Puranas : A Study' (Dr. Devi Prasad Misra), 'Survey of the Work Done on Jaina Mathematics' (Anupam Jain), 'History of Rsabhadeva, the first Tirthankara' (Umanath Shenoy), 'Jaina Technical Terms' (Dr. Mohanlal Mehta).

Vol. VII No. 3 : Titthayara : July 1983
Registered with the Registrar of Newspapers for India
under No. R. N. 30181/77

Hewlett's Mixture

for

Indigestion

DADHA & COMPANY

and

C. J. HEWLETT & SON (India) Pvt. LTD.

22 STRAND ROAD

CALCUTTA-700 001